विचारसेतु

आत्मनिरीक्षण का पथ

मई, 2014 वर्ष – 7 अंक – 03

आत्मा के विषय पर चिन्तन करने का अर्थ हमसब में कुछ पवित्रताओं एवं परिवर्तनों को लाना है। आत्मा की मथनी का उपयोग कर हमलोग अपने मन को शुद्ध मक्खन प्राप्त करने के लिये मथते हैं जो अनायास ही तैरता रहता है। यह मथने की क्रिया ही महत्त्वपूर्ण है और मथने का काम हमसब के द्वारा किया जाना है। इसे हमारे मन एवं बुद्धि को संकीर्णताओं से मुक्त, दोषमुक्त कर देना चाहिये। ऐसे मन एवं बुद्धि के साथ हमें, सांसारिकता में डूबे बिना, स्वतंत्र रूप से तैरने के योग्य जरूर होना चाहिये। ***– स्वामीजी***

विषय सूची

भगवद्गीता में सारभूत धारणायें–119 **2**

गुरूकृपा के द्वारा स्पष्टता

एक महान सान्निध्य–8 – स्वामी निर्विशेषानंद तीर्थ **10**

आत्मनिरीक्षण के लिये श्लोक–38 **20**

इच्छाओं के विलय से परम् शान्ति – माँ गुरुप्रिया

प्रभात रश्मिः **22**

204. दीक्षा-साधना का अनुसरण

हमारे सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्य–3 **26**

संस्कृत-हमारी जीवंत गौरवपूर्ण विरासत

पत्राचार **28**

जीने के लिए अथवा त्यागने के लिए

समाचार एवं टिप्पणियाँ **32**

प्रकाशक एवं मुद्रक स्वामी भूमानन्द तीर्थ द्वारा ब्रह्मविद्या सेन्टर, 2/3 बसेरा अपार्टमेन्ट, सोनारी, जमशेदपुर, झारखण्ड-831011 से प्रकाशित एवं स्टील सिटी प्रेस लिमिटेड, विष्टुपुर, जमशेदपुर, झारखण्ड-831001 द्वारा मुद्रित।

संपादक : स्वामी भूमानन्द तीर्थ

गुरुकृपा के द्वारा स्पष्टता

अंग्रेजी विचारसेतु के जून 2008 अंक से अनुवादित

कृष्ण ने अपने उपदेश का समापन कर दिया है। यह सत्य है कि तेरह वर्षों की तैयारी के बाद कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन की अचानक निर्बलता ने इन वचनों को प्रकट होने का अवसर दिया। किन्तु अब तक संदेश इतना सुन्दर एवं वृहद हो गया है कि यह प्रत्येक के **मन एवं बुद्धि के लिये शाश्वत** रूप में प्रासंगिक है। इसके अलावा यह जीवन की सभी परिस्थितियों एवं चुनौतियों में समान रूप से उपयोगी है।

भगवद्गीता प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिये एक संदेश रखता है जो जीवन में उपलब्धि के लिये कठिन प्रयास करता है।

चर्चा के दौरान कृष्ण ने अनेक सम्बन्धित विषयों को समाविष्ट कर लिया है। इसी विविधता एवं प्रासंगिकता के आधार पर प्रत्येक अध्याय का इसके विषय एवं संदेश से सम्बन्धित विशिष्ट नाम दिया गया है। अन्त में यह संवाद धर्म, आध्यात्मिक साधना एवं दार्शनिक जिज्ञासा का एक पूर्णशास्त्र हो गया है। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक संदेश रखता है जो जीवन में उपलब्धि के लिये कठिन प्रयास करता है। यह व्यक्ति को स्थिरता एवं कृतकृत्यता प्रदान करते हुये उसके मन को दृढ़ एवं बुद्धि को प्रकाशित करता है।

यह अब विशेष युद्ध के संदर्भ में केवल कृष्ण अर्जुन का संवाद नहीं है। चारों ओर के जटिल संसार में मानव जीवन के पूर्ण प्रासंगिक विचारों को मूर्त्तमान करने तक उठ गया है। जिस तरह यह अर्जुन के संकट का उपचार उसे सही दिशा देकर करता है वैसे ही संघर्षशील संसार में मानवजीवन की प्रत्येक समस्या का उपचार सब का समाधान देते हुये कर सकता है।

इसी भाव से कृष्ण फलश्रुति का वर्णन करते हैं जो संवाद को सुनने का फल एवं पुरस्कार है। यह संवाद पारस्परिक वार्त्ता की अपेक्षा आध्यात्मिक दार्शनिक विज्ञान है। प्रासंगिक फलश्रुति का विवरण देने के बाद कृष्ण अर्जुन की ओर मुड़कर पूछते हैं :-

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।। (18.72)

हे पार्थ, क्या तुमने एकाग्रचित्त से इन वचनों को सुना है? हे धनंजय, क्या अज्ञानता से उत्पन्न तुम्हारा भ्रम दूर हो गया है ?

यह पूछकर कृष्ण अर्जुन की उस दशा की ओर संकेत करते हैं जिसमें अर्जुन ने उनसे परामर्श की मांग की थी। अर्जुन की बात को सीधे निन्दा करते हुये कृष्ण ने कठोरतापूर्वक कहा था कि अर्जुन के विचार गलत एवं अशोभनीय थे और वे अनन्त अपयश देते हुये केवल नरक में ले जाने वाले थे। ऐसे एक निर्णय को सुनकर अर्जुन को आघात लगा क्योंकि वह सोचता था कि निश्चित रूप से उसका मन सहानुभूति के अच्छे विचारों से द्रवित था।

तो भी उसने कृष्ण के वचनों में पूर्ण प्यार पाया। इस बात में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ होकर उसने स्वीकार किया कि वह भ्रमित था (2.7) और उसने कृष्ण से श्रेयस पर उपदेश की याचना की। उसने (अर्जुन ने) अनुभव किया कि केवल कृष्ण ही इस बात में उसे सही मार्ग दिखला सकते थे। अर्जुन ने अपनी गलती मानी कि उसका ज्ञान कम था और उसे विस्तृत उपदेश की आवश्यकता थी। उसने माना कि वह शिष्य हैं और कृष्ण उनके गुरू जिनके प्रति उसने पूर्ण रूप से समर्पण कर दिया।

इस तरह सम्पूर्ण संवाद ने अचानक ही एक नया आयाम एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर लिया। यह एक श्रेयस के साधक एवं ऐसे सक्षम गुरु के बीच का संवाद बन गया जो इस विषय पर शिष्य को परामर्श दे सके। इसी तरह से युद्ध स्थल एवं अवसर की आकस्मिकता के बावजूद संवाद एक विशद आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चर्चा हो गई। एक तरह से यह अन्य उसी तरह की घटनाओं से श्रेष्ठ है जो निर्जन जंगलों में शान्त और नीरव आश्रम में संचारित हो सकता है जहाँ सामान्य रूप से ऐसे आध्यात्मिक खोजों को प्रकट किया जाता है और उसके साथ व्यवहार किया जाता है। जैसे कृष्ण अपनी व्याख्या के साथ आगे बढ़ते गये और अर्जुन की ग्रहणशीलता एवं श्रद्धा बढ़ती गई, यह संवाद अनेक प्रासंगिक गहराइयों को छूता गया जिससे संदेश और विषय प्रत्येक बार पूर्णतर होते गए।

अमर आत्मा के अतिरिक्त प्रकृति अपने समस्त रूप में, धार्मिकता, प्रकृति के तीन गुण-अवयव, विश्व रूप आयाम, सर्वोच्च भक्ति, अपने कार्यकारी पहलुओं में ज्ञान विभिन्न मानव प्रवृत्तियाँ और उनसे व्यवहार करने की कला, संन्यास, त्याग, मुक्ति एवं प्रत्येक के लिये अन्तिम आश्रय के समान अन्य विविध धारणाओं को भी संवाद के क्रम में समाहित किया गया।

अर्जुन ने संदेश को विशेष रूप से समझा क्योंकि यह उसके अपने ही संकट एवं उसका सामना करने के लिये आवश्यक संकल्प से सम्बन्धित था। यह स्वाभाविक है कि कृष्ण अन्त में उसी बिन्दु पर आते हैं जहाँ से उन्होंने प्रारंभ किया था, जब अर्जुन टूट गया था। ''क्या तुमने मुझे अच्छी तरह पूर्ण श्रद्धा के साथ, सुना ? अगर तुमने सुना है, क्या तुमने संदेश को अच्छी तरह इसकी सभी प्रासंगिकता, शक्ति एवं स्पष्टता के साथ समझा है?'' अगर दोनों बातें हो गईं थीं, तब अर्जुन अब अपनी ही जिज्ञासाओं एवं विपत्ति के सम्बन्ध में क्या अनुभव करता है? क्या स्वयं की अज्ञानता, संसार की जटिलता एवं धर्म की अपर्याप्त समझ के कारण उत्पन्न उसके मन का भ्रम चला गया है ? क्या वह स्पष्ट, दृढ़, शान्त एवं स्वतंत्र है ?

यही आध्यात्मिक शिक्षा या उपदेश सभी उदाहरणों में होना चाहिये। **कोई गुरु की खोज भ्रम, अज्ञानता एवं अनिर्णय से मुक्त होने के लिये करता है।** ऐसी दुर्दशा से उत्पन्न कठिनाइयाँ कुछ भी हो सकती हैं। यह व्यथित करने वाली जिज्ञासा, तीव्र इच्छा युक्त खोज या चिंतित करने वाला अनिर्णय हो सकता है।

गुरु का काम साधक की बात को ठीक से सुनकर उसे सर्वोच्च ज्ञान से जोड़ना है। तब शिष्य को प्यार से सम्बोधित कर उसे प्रबुद्ध करना है। अगर गुरु अपना काम अच्छी तरह करते हैं तो परिणाम तत्काल होता है। इस तरह कृष्ण चाहते हैं कि अर्जुन इस संवाद की क्षमता के विषय में कहें। क्या उसे अपनी समस्याओं का समाधान एवं स्पष्टता तथा दिशा प्राप्त हुई है ?

हमलोग सर्वोच्च प्रभु की आराधना करते ही हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उनका प्रदर्शन है। हमारा शरीर, मन एवं बुद्धि भी उनकी हस्तकला है। इन सब के बावजूद जीवन और संसार से मिलने के समय मानव मन की अपनी शंकायें एवं

आवश्यकताएँ हैं। बुद्धि की अपनी जिज्ञासायें एवं पिपासा है। जब ये सब अपना बल लगाते हैं सहायता एवं मार्गदर्शन की निश्चित रूप से आवश्यकता होती है। स्वभावतः कोई भी व्यक्ति अदृश्य, निरपेक्ष भगवान से समय पर उत्तर पाने के लिये खोज करता है।

यहीं पर कोई गुरु की अद्वितीय भूमिका देखता है। **मानव प्रश्न का अवश्य मानव उत्तर ही होगा।** मानव समस्या का अवश्य मानवीय समाधान होना चाहिये। इस तरह साधक को एक उपदेशक, मार्गदर्शक एवं आश्रय से मिलना पड़ता है। बिना इस महान संधि के किसी को कुछ भी मदद नहीं मिलने वाला है।

बिना इस महान संधि के किसी को कुछ भी मदद नहीं मिलने वाला है।

गुरु से सम्पर्क किसी भी तरीके से हो सकता है। अर्जुन का अचानक ही साधक बनना और मुक्ति पाने के लिये कृष्ण की ओर आशा से देखना विचित्र, आश्चर्यजनक हो सकता है किन्तु उदाहरणीय है। अर्जुन के समान दूसरों के पास भी उल्लेखनीय उदाहरण हो सकता है। किन्तु सब के लिये सभी घटनाओं में गुरु के साथ सम्पर्क अवश्य होना चाहिये। ऐसे सजीव मिलन के लिए प्रकृति अनेक अवसर प्रदान करती है। इनमें से कोई एक तत्पर साधक के अपने जीवन के उचित क्षण में उपयोगी होगा।

पहले अर्जुन ने प्रश्न किया था। अब यहाँ कृष्ण हैं जो जानना चाहते हैं। देखिये, कितने सुन्दर तरीके से एक दूसरे का पूरक बनते हैं। प्रारम्भ एवं समापन साथ-साथ चलते हैं। यह संवाद के सूत्र को अपूर्व, दृढ़ एवं विशद बना देता है।

भगवद्गीता का प्रधान उद्देश्य मन का उपचार करना और इसके सभी भावनात्मक बंधनों को विलीन करना है। यह साथ ही बुद्धि के प्रश्नों और पहेलियों का समाधान भी करती है। एक बार इन दोनों का समाधान हो जाता है तब हमारे आन्तरिक व्यक्तित्व में कुछ भी बर्ताव करने या सम्बोधित करने के लिये नहीं रहेगा। शारीरिक विकृतियों का उपचार करने के लिये चिकित्सा शास्त्र है।

भगवद्गीता का प्रधान उद्देश्य मन का उपचार करना और इसके सभी भावनात्मक बंधनों को विलीन करना है।

आध्यात्मिकता एवं दर्शनशास्त्र का लक्ष्य मन और बुद्धि के अदृश्य, आत्मिक अवयवों से बर्ताव करना है।

अर्जुन और कृष्ण ने एक साथ इस सूक्ष्म, आन्तरिक एवं जटिल पाठ को प्रभावशाली तरीके से पूरा किया है। अब अर्जुन को उसी प्रत्यक्षता एवं पूर्णता के साथ कृष्ण को उत्तर देना है।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।। (18.73)

> कृष्ण, आपकी कृपा से मेरा भ्रम दूर हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ। अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

अर्जुन का उत्तर भी प्रासंगिक था। वास्तव में यह आश्चर्यजनक रूप से प्रासंगिक एवं संक्षिप्त था। वह पहले बताता है कि उसका भ्रम दूर हो गया है। अब अर्जुन किसी प्रकार के शोक या दुःख की चर्चा नहीं करता है। कृष्ण के उपदेश के वचन एवं अर्जुन का संवेदनशील ग्रहण प्रबुद्धकारी, मुक्त एवं कृतकृत्य करने वाला है। यह ज्ञान संवाद ही है जो उनके बीच संचारित हुआ था।

अन्त में अर्जुन स्पष्टरूप से मानता है कि वह पहले जैसा व्यक्ति नहीं है बल्कि बिल्कुल शान्त एवं स्वस्थ है। ''मेरा भ्रम चला गया है और मैंने अपनी स्मृति पुनः पा ली है और मुझे स्पष्टता एवं आत्म-मूल्यांकन मिल गया है।'' अर्जुन कहता है कि यह सब केवल कृष्ण की कृपा से हुई है।

कृपा, इसका स्थान एवं उद्देश्य एक ऐसा विषय है जिसपर भक्तों एवं साधकों द्वारा वाद-विवाद किया जा चुका है। **प्रायः यह मन में एक अनिश्चित चित्र बनाती है।** यहाँ साधक को इस बात में एक स्पष्ट दिशा मिलती है।

साधारणतया हम कृपा की आशा करते हैं, यह सोचते हुये कि सर्वोच्च वास्तविकता, प्रभु, ही एक ऐसे हैं जो कृपा प्रदान करेंगें। सभी धार्मिक प्रयास प्रभु को प्रसन्न करने के लिये हैं। उसके बदले भक्त उनकी खुशी एवं कृपा की

आशा रखते हैं। वह कृपा क्या है, भक्त प्रायः जिसके बारे में सोचते इसके लिय खोज करते हैं और प्रेमपूर्वक आशा करते हैं ?

क्या प्रभु हमारे अपने ही मन की अपनी ही धारणा नहीं है? हमलोग चारों ओर संसार को अपनी इन्द्रियों के कारण देखते हैं। इंद्रियों के इस ग्रहण के आधार पर, जो जटिलता एवं भय प्रस्तुत करती है, हमारा मन आश्चर्य करने लगता है कि इस भव्य प्रदर्शन के कारण के रूप में इससे परे क्या है। तब यह सर्वोच्च शक्ति एवं प्रभु के विचार को सूत्रबद्ध करने की ओर झुकता है। जीवन के कल्याण एवं पूर्णता को सुनिश्चित करने के लिये किये गये प्रयास में मन इसकी सर्वोच्चता की जाँच करता है। उसी स्वर में वह प्रभु को प्रसन्न करने जैसा भी अनुभव करता है जिससे वह खुश होंगें और इच्छित सभी पुरस्कार प्रदान करेंगें।

इस तरह क्या सम्पूर्ण धार्मिक क्षेत्र अज्ञानता एवं भ्रम के द्वारा शासित नहीं होता है? यही कारण है कि यद्यपि लाखों धार्मिक भक्त हैं, वे लोग कोई स्पष्ट एवं निश्चित आन्तरिक उत्कर्ष एवं कृत-कृत्यता नहीं पाते हैं।

अर्जुन की दशा क्या थी और वह इसके प्रभाव में क्या खोजता था? और अब कृष्ण के साथ संक्षिप्त संवाद के बाद, वह क्या अनुभव करता हैं, उसने क्या प्राप्त किया है ? क्या ये भक्तों एवं साधकों के लिये समान रूप से स्पष्ट निर्णायक शब्द नहीं हैं ? क्या यह स्वयं कृपा नहीं है ?

एक समय में हमारे शरीर का जन्म प्रकृति द्वारा शासित नियमों, प्रक्रियाओं एवं उससे संचालित चक्रों द्वारा हुआ था। इस संसार में या हमारे जीवन में कुछ भी बहुत विशेष या अनन्य घटना नहीं है। अनेक जीव जन्म लेते हैं, उसमें मानव भी है। जैसा किसी का जन्म था, वैसा ही उसके बाद उसका जीवन होगा। जीवन इन नियमों एवं प्रक्रियाओं के अधीन होकर आगे चलता रहेगा। एक दिन शरीर का पतन हो जायेगा। **इस सदैव होने वाले जन्म और मृत्यु, फलस्वरूप इसके बीच की जीवन-अवधि के बारे में कुछ भी विशेष सोचना स्वयं एक विकृति, ज्ञान का विकृत स्वरूप है।**

सभी शंकाओं से मुक्त पुनः स्थिरता प्राप्त कर अर्जुन कहता है कि वह वही करेगा जो कृष्ण उसे करने के लिये कहेंगें। कृष्ण एवं उनके उपदेश को स्थान

देते हुए अर्जुन का 'मैं' पीछे चला गया। वह उत्तर देता है ''आपके वचनों ने मुझे एक संकल्प दिया है। मुझे विशेष रूप से या अतिरिक्त कुछ नहीं कहना या करना है।''

कितना सरल, सुविधापूर्ण एवं लाभप्रद है। यही लक्ष्य प्रत्येक साधक को रखना चाहिये। प्रकृति एवं इसके तीन गुणों के वशीभूत होकर हमें सदैव कर्म करना है। किसी प्रकार की निश्चित अपनी इच्छा अर्थपूर्ण प्रस्ताव की अपेक्षा केवल चर्चा एवं विवाद का विषय है। हमारे अपने ही विकास और वंशानुगत एवं पर्यावरण से प्राप्त प्रवृत्तियों के कारण हमारे कर्मों की अपनी एक दिशा या राह होगी। यह मन और बुद्धि का विकृत खेल है जो इस बात में विपत्ति या असंगति लाती है।

यह मन और बुद्धि का विकृत खेल है जो जीवन में विपत्ति या असंगति लाती है।

अर्जुन द्वारा मन में अनुभव किया गया भय, आशंका एवं अनिर्णय सभी मंद पड़ गये हैं। अब वह वही करने के लिये तैयार है जिसके लिये वह आया था। अर्जुन की घोषणा है - ''मैं आपकी परामर्श के अनुसार कर्म करूँगा।''

यह परामर्श क्या है ?

अर्जुन के मन में मृत्यु एवं मारने के बारे में प्रश्न था। कृष्ण का इस पर उत्तर है कि **किसी के लिये कोई मृत्यु नहीं है।** उसी तरह **कोई जन्म भी नहीं है।** मृत्यु के बारे में सोचना बिल्कुल मिथ्या विश्वास है। यह अन्तर्दृष्टि उस आध्यात्मिक उपस्थिति की खोज करने से ही आती है जो शरीर को जीवित रखती है। केवल आत्मा सम्बन्धी जिज्ञासा मृत्यु के द्वारा उत्पन्न समस्या एवं अशान्ति का उपचार कर सकती है। अतएव कृष्ण की परामर्श के प्रथम वचन हैं, **''अमर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करें''** और मन की सभी चिन्ताओं, अशान्ति एवं शंकाओं पर विजय पायें।

''यह कर लेने के बाद वह करो जिसके लिये तुम यहाँ आये हो - अर्थात युद्ध करो।'' *तस्माद् युध्यस्व* कृष्ण के दुहराये गये वचन हैं (2.18,37,38)। कृष्ण ने अनेक बार कहा भी है कि शोक अनावश्यक है। अर्जुन को किसी भी वस्तु पर कभी शोक नहीं करना चाहिये (2.11,25,26,27,28,30)।

सम्पूर्ण रूप से मानव जीवन के संदर्भ में इसे लागू करने पर, इन वचनों का आशय है कि हमलोगों को अपने सामान्य कर्मों की निन्दा या उससे अलग होने के लिए नहीं सोचना चाहिये चाहे परिणाम कुछ भी हो। अच्छी तरह से कठिन प्रयास करने में ही मानव की प्रतिष्ठा एवं कृत-कृत्यता रहती है। वैसा करते समय हमलोगों को बिल्कुल किसी के लिये पश्चाताप नहीं करना चाहिये। इसके स्थान पर **हमलोगों को प्रत्येक वस्तु में पूर्ण आनंद एवं तालमेल (समरसता) पाना चाहिये।**

इस तरह सम्पूर्ण संवाद एक शाश्वत प्रासंगिकता एवं उपयोगिता प्राप्त कर लेता है। यह मन एवं बुद्धि की समस्याओं की चर्चा करता है और उन सब का पूर्ण समाधान देता है जैसा अन्त में अर्जुन के उदाहरण से प्रमाणित होता है। और यह संवाद को पूर्ण विस्तृत, विश्वव्यापी आयाम का आध्यात्मिक एवं दार्शनिक कथा बना देता है। यही कारण है कि तपस्वियों, विद्वानों एवं ज्ञानियों के द्वारा तबसे अतुलनीय विश्वास, उत्साह एवं जोश के साथ इसे पढ़ा गया, पुनः पढ़ा गया, व्याख्या किया गया, स्पष्ट किया गया एवं प्रचारित किया गया है।

यह संवाद मन एवं बुद्धि की समस्याओं की चर्चा करता है और उन सब का पूर्ण समाधान देता है।

क्रमशः

आश्रम के प्रकाशन का नया ई-मेल

e-mail id : **publications.ashram1@gmail.com**

- किताब, सीडी, डीवीडी और विचारसेतु / विचारसरणी प्राप्त करने के लिए।
- आश्रम के प्रकाशन संबंधित जानकारी के लिए।
- आश्रम के ई-मेल न्यूज लेटर्स ('Inner Treasure' & 'Verses for Introspection') को प्राप्त करने के लिये।

अन्य सभी विषयों के लिए कृपया आश्रम के ई-मेल Ashram e-mail id : **ashram1@gmail.com** का प्रयोग करें।

एक महान सान्निध्य-8

(फरवरी 2014 अंक से जारी)

स्वामी निर्विशेषानन्द तीर्थ

[इस अनुच्छेद के साथ पिछला लेख समाप्त हुआः कार्य करने की विधि में स्वामीजी के साथ जो भी अन्तर हुये हों किन्तु आध्यात्मिक मूल्यों को धारण करने के सम्बन्ध में, विशेषकर संन्यास, आर्जवम, अस्वामित्व एवं शुद्धता के उच्चतम आदर्श को बनाये रखने में कभी भी कोई संघर्ष या मतभेद नहीं था। नारायणाश्रम तपोवनम् के इतिहास में कईबार नाजुक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं थीं जहाँ स्वामीजी का तात्कालिक व्यवहार या सुविचारित दृढ़ निर्णय आध्यात्मिक सत्य एवं उद्देश्य के प्रति उनकी दृढ़ धारणा का परिचायक था। भक्तों एवं शुभचिन्तकों द्वारा अधिक आरामदायक पथ अपनाने के लिये विरोधी सुझावों की पृष्ठिभूमि में वे क्षण सच्चे साधकों के जीवन में मार्गदर्शक तारे के समान रहते हैं।]

साउथ सैनिक फार्म्स में हमारा आश्रम

दिल्ली में पूज्य स्वामीजी का ज्ञानयज्ञ 1974 ई. में शुरू हुआ। 1975 से 1991 तक उनका आतिथ्य श्रीमती मीना और श्री बालन सुब्रमन्यन ने अपने हॉज-खास इनक्लेव निवास स्थान पर किया। एक ज्ञान यज्ञ के समय, शायद 1981 ई. में, एक भक्त (पी०) ने स्वामीजी को जमीन का एक प्लॉट (तब करीब 3 एकड़) साउथ सैनिक फार्म्स में अर्पित किया जो उन दिनों देवली गाँव के नाम से जाना जाता था। उनके अर्पण को स्वीकार करते हुये स्वामीजी ने पी० से उस सम्पत्ति की देखभाल करने को कहा।

कुछ ही वर्षों के भीतर स्वामीजी की संन्यासी शिष्या साध्वी हरि प्रियाजी को एकान्त आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये कुछ जगह की आवश्यकता हुई। स्वामीजी के कुछ भक्तों ने उनके कथनानुसार बाहरी दीवार एवं उनके रहने के लिये एक छोटी कुटिया बनवायी। इसके बाद शीघ्र ही ब्रह्मविद्या सेन्टर, दिल्ली के कुछ गृहस्थ भक्तों ने वहाँ समय-समय पर स्थायी रूप से तापसी जीवन जीने की इच्छा से पाँच राजस्थानी मिट्टी निर्मित कुटिया बनवायीं। किन्तु साध्वी हरिप्रिया जी

को छोड़कर शायद ही कोई उन कुटियों में ठहरा था। दोषपूर्ण प्रारूप एवं रखरखाव में कमी के कारण शीघ्र ही उनकी दशा बहुत खराब हो गई।

श्रीमती मीना और श्री बालन की उम्र बढ़ रही थी। स्वामीजी के ठहरने की अवधि और उनके क्रियाकलाप भी बढ़ रहे थे। साथ ही भक्तों की संख्या धीरे धीरे बढ़ रही थी। अतएव यह अनिवार्य हो गया कि स्वामीजी एवं उनके संन्यासी शिष्यों को ज्ञान यज्ञ की अवधि में ठहराने के लिये कुछ सार्वजनिक सुविधा बनाई जाय। इस पर तात्कालिक आधार पर अक्टूबर 1991 ई. में स्वामाजी के आगमन की अवधि में विचार-विमर्श किया गया। तुरंत ही पी० साउथ सैनिक फार्म्स देवली में आश्रम के फिर से ठीकठाक करने का उत्तरदायित्व लेने सामने आये। तब तक साध्वी हरिप्रियाजी उस स्थान से चली गई थी।

पी० ने जमीन के एक छोटे भाग को बेचकर अतिरिक्त सुविधायें बनाईं। उन्होंने महीनों तक अकेले इस दिशा में काम किया जिससे अक्टूबर 1992 तक अपने प्रिय गुरुदेव एवं उनके शिष्यों को ठहराने के लिये वह स्थान तैयार हो गया। उन्होंने मिट्टी निर्मित कुटियों को मरम्मत करवायी और मुख्य भवन में एक तल और जोड़ दिया जिससे सत्संग भवन तथा दो कमरे, एक माँ के लिये और एक स्वयं मेरे लिये बने। रसोईघर के साथ नीचे के कमरे को पूज्य स्वामीजी के ठहरने के लिये साफ-सुथरा कर लिया गया।

यह स्थान अरावली पहाड़ियों के पदतल पर था जहाँ सैनिक फॉर्म गेट से गाड़ी से जाने में 15 मिनट लगता था। कच्ची सड़क थी जो आलीशान अट्टालिकाओं से युक्त फार्म हाउसों से होकर घूमती हुई जाती थी। जब हमलोग स्वामीजी के साथ अक्टूबर 1992 में पहुँचे, आश्रम दिल्ली की भीड़ से दूर शान्तिपूर्ण तापसी धाम मालूम पड़ता था।

आश्रम की तापसी छवि को अक्षत रखकर कुटियों का मरम्मत ईंटें बिछाकर एवं विशेष मजबूती देकर किया गया। लाल खपड़ों वाला ढालवाँ छत के साथ लाल दीवारें, प्लैटफार्म्स, खटिया, तख्तें, टेबुल एवं लाल पत्थरों से बने बेसिन, लकड़ी के छोटे दरवाजे प्राचीन परिवेश के निर्माण में इन सभी का सहयोग था।

सुधार किये गये कुटियों एवं प्रेरित भक्तों के अतिरिक्त एक स्वामी भक्त अच्छे नस्ल का कुत्ता था। पूज्य स्वामीजी ने उसका नाम वृहदारण्यक उपनिषद के प्रख्यात साधक के नाम पर गार्गी रखा जिसने राजा जनक की विद्वत-सभा में महान याज्ञवल्क्य का सामना किया। गार्गी ने चारों तरफ दौड़कर एवं रात में भौंककर उस विरान भूमि में हमसब की रक्षा करने की जवाबदेही ली थी।

सचमुच में वहाँ पर बंदर, मोर, गिलहरियाँ, चिड़ियाँ एवं चूहे थे। रसोई घर के क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिये प्रत्येक रात में मुझे चूहेदानी रखनी पड़ती थी और फँसे जीव को निर्वासन के लिये नजदीक के जंगल में छोड़ना पड़ता था। कुछ दिनों के बाद माँ ने शंका प्रकट की कि शायद हमलोग एक ही चूहा को खुशी खुशी बार-बार प्रतिदिन फँसा रहे हैं। अतएव सत्य का पता लगाने के लिये माँ ने फँसे हुये चूहे की पूँछ को काले पेंट से रंगना शुरू किया और तब मैं उन्हें जंगल ले जाता। यह प्रमाणित हो गया कि एक बार निर्वासित होने पर कभी भी कोई चूहा वापस नहीं आया।

ज्ञानयज्ञ के समय कुछ भक्त अपने गुरुदेव की सेवा करने के लिये शहर में अपने आरामप्रद निवास स्थान को छोड़कर कुटियों में ठहर गये। जो भी वहाँ सत्संग के लिये आता, उन्हें भोजन दिया जाता था। सप्ताहान्तों में प्रायःआगन्तुकों की संख्या एक सौ पार कर जाती। जो कोई रात में ठहरना चाहते थे उन्हें भी हार्दिकता के साथ जगह दी जाती थी। कोई रसोइया या वेतन भोगी सहायक नहीं था।

भक्तों के बीच बहुत अधिक प्रेरणा, तपस्या एवं पारस्परिकता थी। **एक संत का आतिथ्य करने के लिये किसी सार्वजनिक स्थान का महत्व बहुत स्पष्ट हो गया।**

एक संत विश्व के होते हैं। लोगों को उनके पास आने में अवश्य स्वतंत्रता का अनुभव करना चाहिये। उन्हें अपने हृदय की बात कहने और उन्हें किसी न किसी तरीके से सेवा करने का अवसर भी अवश्य मिलनी चाहिये। और यह केवल आश्रम के परिवेश में सम्भव है। समाज के सभी वर्गों के साधक एवं भक्त स्वतंत्रतापूर्वक आने लगे और गुरु सन्निधि में ठहरने भी लगे।

यद्यपि भक्तों को भोजन देने के लिये कोई उचित सुविधा नहीं थी, फिर भी आश्रम के मुख्य भवन के नजदीक की जुड़वाँ कुटिया में इसका प्रबन्ध किया गया। एक अलग करने वाली दीवार को हटाकर लम्बा बरामदा बनाया गया, जहाँ एकबार में लगभग पन्द्रह लोगों को भोजन कराया जा सकता था। छोटे से रसोईघर से जुड़ा एक छोटा बरामदा भोजन तैयारी के साथ-साथ वितरण क्षेत्र का काम करता था। सभी रूपान्तरणों के बावजूद रसोई पकाने, भोजन करने एवं धोने के लिये स्थान एवं सुविधा अत्यन्त अपर्याप्त थी।

सामान्य रूप से आगन्तुकों की संख्या की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी। अतएव हमलोगों को कभी-कभी दुबारा या तीसरी बार भोजन पकाना पड़ता था। भोजन करने एवं साफ करने का काम देर दोपहर तक घंटों चलता रहता। ये सभी प्रबन्ध खुशी खुशी महान समर्पण एवं बलिदान के साथ मुख्य रूप से कुछ बुजुर्ग महिलाओं के द्वारा कुछ युवाओं की सहायता से किये जाते।

गुरु सन्निधि में व्यक्ति की अवश्य प्रगति

दूर से गुरु की पूजा करना, उनके प्रवचनों को सुनना और ध्यान का अभ्यास करना एक बात है। उनके साथ रहना और उनके साथ घनिष्ठतापूर्वक विनम्रता के साथ व्यवहार करना और अनुशासन, शुद्धता, परिष्कार एवं विशाल हृदय के सम्बन्ध में उनके चिर संचित स्तर के अनुसार प्रगति करने के लिये तैयार रहना, बिल्कुल अलग बात है। केवल गुरु के घनिष्ठ संग में, उनके प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन एवं निरीक्षण के अधीन काम करने से साधक जान पाता है कि **अहंकार-विलोपन क्या है या अहंकार की उदात्तता** क्या है, जो विस्तार एवं आत्म-परिवर्तन की सच्ची साधना है।

गुरु की एक व्याख्या है कि "वे जो अशुद्धियों (गु) को हटाता (रु) है।" हमारे अच्छे गुणों के साथ साथ अवगुण केवल परस्पर व्यवहार के द्वारा सामने आते हैं। जब हमलोग उनके संग रहते हैं और काम करते हैं, गुरु हमें सुधारने एवं शुद्ध करने का एक अवसर पाते हैं। विविध परिस्थितियों में गुरु की प्रतिक्रिया के द्वारा हमलोग उनकी दृष्टि, उनके प्रेम एवं उनके वैराग्य का स्पर्श पाते हैं। उनकी टिप्पणी को ग्रहण कर और अपनी भूल को स्वीकार कर, हमारा

अहंकार उदात्त हो जाता है। अपने गुरु भाईयों एवं गुरु बहनों के साथ काम करने और **उन्हें प्रेम से अपने हृदय में जगह देने से, जैसा गुरु करते हैं, हमारे मन का विस्तार होता है।**

गुरु सन्निधि में नया प्रकाश पाकर बहुत साधकों ने अपनी स्थिति एवं लक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया। कुछ लोग परिवर्तन करने के लिये तैयार थे, कुछ अपने अहंकार एवं स्वामित्व को दृढ़ता से पकड़े हुये थे। कुछ अधिक नजदीक आये एवं कुछ अन्य दूर हो गये। किन्तु संत का जीवन नदी के समान बहता रहता है। जो उनके साथ नहीं बह सकते, जो उनके मिशन के साथ बड़े से बड़े आयामों को ग्रहण कर प्रगति करने में असफल हैं, वे स्वभावतः दूर हो जायेंगें। संत निश्चित रूप से उनके बारे में दुःखी होंगें। वे उनकी अनुपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं किन्तु वे केवल प्रकृति के असहाय साक्षी हो सकते हैं। क्योंकि साधक ही अपनी खिड़कियों को बंद कर ताजी हवा को अन्दर आने देने से अस्वीकार कर देते हैं।

यही कारण है कि स्वामीजी प्रायः कहते हैं कि एक संत का जीवन पापपूर्ण है। अनेक भक्त एवं शिष्य, जिन्होंने उनसे प्रेम किया, जिन्होंने उनकी महान भक्ति एवं समर्पण से सेवा की, वे पीछे रह गये थे क्योंकि वे अपने अहंकार एवं मोह को पार करने में समर्थ नहीं थे। प्रायः वह **भक्तिमय अहंकार एवं मोह** होता है। अपने गुरुदेव की अच्छी तरह सेवा करने का अहंकार तथा घनिष्ठतम भक्त होने के बारे में मोह।

पुराने भक्त जब तक वे आध्यात्मिक रूप से प्रगति कर संकीर्ण सांसारिक भावनाओं के प्रति वैराग्यवान नहीं हो जाते हैं, जब तक युवा साधकों को वे माता पिता के समान विकसित होने में प्रेम से समर्थन नहीं देते हैं, जब तक वे नव-आगन्तुकों के विकास एवं विशिष्टता से आनन्दित नहीं होते हैं, शीघ्र ही वे ईर्ष्या एवं प्रतिद्वन्द्विता के शिकार हो जाते हैं। किसी भी व्यक्ति को यह अवश्य याद रखना चाहिये कि **ब्रह्मविद्या के महान मिशन में कोई भी अनिवार्य नहीं है।** एक साधक या ज्ञानी इस सतत प्रवाह में जो कुछ भी सहयोग कर सकते हैं, वे उसमें सहयोग देने का प्रयास करते हैं। यह धारा किसी के लिये न रूकती है और न प्रतीक्षा करती है।

स्वामित्व का त्याग

1994 से पूज्य स्वामीजी, माँ एवं मेरे साथ दिल्ली साल में दो बार, मार्च और अक्टूबर में आने लगे। अक्टूबर आगमन के मुख्य केन्द्र पर सार्वजनिक प्रवचन जारी रहा। मार्च आगमन विशेष रूप से एकनिष्ठ साधकों को गुरु सन्निधि में रहकर विकास करने के लिये था। अतएव गुरु सन्निधि में रहने का उद्देश्य बढ़ गया। फलस्वरूप शुद्ध करने की प्रक्रिया तेज हो गई और तब तक छिपी महत्वाकांक्षाओं एवं मोह पर शाश्वत रूप से प्रकाश डाला गया।

आगन्तुक भक्तों के लिये स्वामीजी और आश्रम से आरामदायक दूरी रखना कठिन नहीं था। किन्तु पी० के साथ यह बिल्कुल आसान नहीं था क्योंकि वे ही वह व्यक्ति थे जो प्रत्येक चीज की देखभाल कर रहे थे और प्रमुख निर्णय ले रहे थे।

यथोचित अन्नक्षेत्र की विशेष आवश्यकता को देखते हुये कुछ साधन सम्पन्न भक्त एक नया भवन निर्माण करने के प्रस्ताव के साथ सामने आये। किन्तु पी० ने किसी को उस सम्पत्ति पर धन खर्च करने की अनुमति देने से सीधे अस्वीकार कर दिया। कुछ भक्तों ने जो आश्रम के विविध मौलिक सुविधाओं के विकास में रुचि रखते थे, सुझाव दिया कि जमीन का रजिस्ट्रेशन पूज्य स्वामीजी के नाम से कर दिया जाय जिससे वे लोग सहयोग देने में स्वतंत्रता का अनुभव कर सकें। पी० ने असहमति प्रकट की।

स्वामीजी सदैव बल देकर कहते आ रहे हैं कि आश्रम को किसी एक व्यक्ति के सहयोग पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। इसे आवश्यक रूप से अनेक सहयोगों के द्वारा अवश्य विकसित होना चाहिये। अन्यथा यह अपनी आध्यात्मिक स्वतंत्रता एवं समानता, अपनी सर्व समावेशी प्रकृति को खो देगी। कोई भी सार्वजनिक कार्य जो हमलोग करना चाहते हैं, उसके कोष में जहाँ तक सम्भव हो अधिक-से-अधिक शुभचिन्तकों के द्वारा धन अवश्य आना चाहिये। पी० का स्वामित्व प्रवृत्ति, आश्रम को एक स्वतंत्र आध्यात्मिक धाम के इस मौलिक सिद्धान्त के अनुसार विकसित करने की अनुमति नहीं दे रहा था।

यह स्पष्ट हो गया कि यद्यपि पी० ने अपने प्रिय गुरुदेव को यह जमीन अर्पित कर दी थी वे अपना स्वामित्व नहीं छोड़ सके। उनके मन में यह अहं भाव था कि उन्होंने ही जमीन का दान किया था और वहाँ होनेवाले सभी क्रियाकलाप उनकी अपनी इच्छा के अनुसार हो, चाहे वे उनके गुरुदेव की इच्छाओं के विरोध में भी क्यों न हों। सचमुच में ऐसे अहंकार भाव असामान्य नहीं है। हमलोगों ने संत वचन सुना है – ''देना आसान है किन्तु यह अत्यन्त कठिन है कि हमलोग दान के बारे में अपने मन से अहं एवं स्वामित्व को भी छोड़ दें।'' बहुत से भक्त अपने गुरुदेव को अर्पण देते हैं किन्तु वे इस बात को जानना चाहेंगें कि उनके गुरुदेव उनके अर्पण के द्वारा क्या कर रहे हैं।

कार्यक्रम से सम्बन्धित अन्य अनेक बातों में भोजन देने, प्रशासन के साथ-साथ सुविधाओं का उपयोग करने में, यह स्पष्ट होता गया कि अब इसे पूज्य स्वामीजी के आश्रम के रूप में नहीं समझा जा सकता था। बल्कि अब यह पी० का आश्रम था। स्थानीय लोग भी इस आश्रम को उनके आश्रम के रूप में ही देखते थे। आश्चर्यजनक रूप से अपने बातचीत में वे बारम्बार कहते थे कि वे क्या चाहते थे। स्वामीजी की इच्छाओं को पीछे की बेंचों पर धकेल दिया जाता था। कुछ समर्पित भक्त उनके व्यवहार से प्रायः अपमानित अनुभव करते थे।

स्थिति हमसब के लिये अधिक-से-अधिक कठिन हो रही थी। एक ओर पी० का बहुत सुन्दर व्यक्तित्व था और हम तीनों को वे बहुत प्रिय थे। दूसरी ओर स्वामीजी द्वारा प्रेम से मनाने के बावजूद, पी० की कठोर प्रकृति उन्हें बदलने की अनुमति नहीं दे रही थी। सम्पत्ति के प्रति उनका मोह अधिक-से-अधिक बढ़ रहा था।

अनिकेतः का अर्थ

अन्ततः 8 मार्च 1997 को जब हमलोग साउथ सैनिक फॉर्म, आश्रम में पहुँचे हमलोगों ने सामने में एक बैनर देखा जो घोषणा कर रहा था कि वहाँ आवासीय योग शिविर चल रहा था। जब स्वामीजी ने पी० से बैनर के बारे में पूछा, पी० ने जोर देकर कहा कि यह उनकी इच्छा थी कि उस स्थान का उपयोग साल भर

किसी भी अच्छे काम के लिये किया जाय। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने यह भी सोचा था कि आवश्यकता होने पर स्वामीजी की कुटिया का उपयोग योग शिक्षकों को ठहराने के लिये हो। जैसे ही पी० ने कमरे को छोड़ा, हमारे अगले कदम के बारे में स्वामीजी के चेहरे पर स्पष्ट रूप से लिखा हुआ था और वह हमारे चेहरों पर भी था। कोई शंका नहीं थी किन्तु हमारे कदम का क्या प्रभाव पी० के मन पर होगा, यह सोचकर कुछ मृदुल चिंता एवं उदासी थी।

स्वामीजी ने विविध अवसरों पर अनिकेतः का अर्थ महान भक्तिमय गुणों में से एक के रूप में स्पष्ट किया था जिसे श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के 12 वें अध्याय में प्रस्तुत किया था। ''अनिकेतः का अर्थ गृह-विहीन होता है।'' जब स्वामीजी हमारे आश्रम में भगवद्गीता के इस भाग को पढ़ा रहे थे, एक भिक्षुक लड़का कुछ दिनों तक विश्राम करने के लिये आश्रम में आया। दूसरे दिन, रात्रि सत्संग के बाद स्वामीजी ने उसे स्नेहपूर्वक गले लगाया और उससे कुछ और दिन विश्राम करने के लिये ठहरने को कहा। लड़का सहमत हो गया। किन्तु अगली सुबह हमलोगों ने पाया कि उस लड़के ने किसी को कुछ कहे बिना आश्रम छोड़ दिया था। उसके मेज पर हिन्दी में लिखा एक छोटा पुर्जा था – ''आप सब ने मुझे जो स्नेह दिया एवं जो देखभाल की, उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। किन्तु मुझे आश्रम अवश्य छोड़ देना चाहिये, कदाचित ऐसा न हो कि मैं आपके प्रेम के द्वारा बँध जाऊँ।''

उसदिन सत्संग के समय माँ ने स्वामीजी से पूछा था कि क्या 'अनिकेतः' का यह अर्थ है कि हमलोगों से उम्मीद नहीं कि जाती है कि हमारा निश्चित आवास हो। ''क्या हमलोगों को अनिकेत्व का अनुभव करने के लिये आश्रम से दूर जाना है?'' स्वामीजी ने स्पष्ट किया था ''इस गुण को मूर्तिमान बनाने के लिये किसी को रास्ते पर नहीं रहना है, किन्तु उसे जिस स्थान पर वह रहता है, उसके बारे में मोह या स्वामित्त्व के अहंकार से मुक्त होना चाहिये। उसे उस स्थान को छोड़ने के लिये भी तैयार रहना चाहिये, जब उसकी आवश्यकता हो।''

सही अवसर सामने था। स्वामीजी ने हमसब से कहा, ''मैं सोचता हूँ कि हमलोगों को इस स्थान को आगे कुछ सोचे बिना छोड़ देना चाहिये। कल सुबह

में सभी भक्त पाद पूजा के लिये आयेंगें। निर्णय की घोषणा करने के लिये वह सही समय होगा। आपलोग क्या कहते हैं ?'' माँ और मैं दोनों हृदय से इस पर सहमत हो गये।

कुछ भक्त, जिन्हें निर्णय के बारे में मालूम हुआ, स्वामीजी से याचना की और कहा कि पी० को क्षमा कर दें और वे वहीं रहें। वे नहीं समझते थे कि क्षमा करने या क्षमा न करने की बात संतों पर लागू नहीं होता है। क्योंकि संत अहंकारपूर्वक कार्य नहीं करते हैं, वे केवल वह करते हैं जो **धर्म के अनुकूल** होता है अर्थात् जो प्रकृति का अपना ही पवित्र लय होता है। कुछ अन्य लोगों ने सुझाव दिया ''जब तक हमलोग दूसरी जगह नहीं पाते हैं तब तक हम सब यहीं रहें या कम से कम हमसब इस घोषणा को अक्टूबर आगमन तक स्थगित कर दें।'' भक्तों में से केवल एक भक्त हमसब के मत से तुरंत सहमत हो गये।

अगली सुबह 9 मार्च 1997 को दिल्ली से सभी भक्त मैदान में लगाये गये शामियाने के नीचे गुरुपूजा देखने और अपने गुरुदेव का संदेश सुनने के लिये एकत्रित हुये थे। कोई नहीं जानता था कि उस दिन एक विशेष संदेश उनके लिये प्रतीक्षा कर रहा था।

पादपूजा के बाद स्वामीजी ने पहले पी० के परिश्रमी प्रयास एवं अनेक भक्तों के तापसी बलिदान की सराहना कि जिससे पाँच वर्षों तक ज्ञान यज्ञ का कराना संभव हुआ। उन्होंने साधकों के समर्पण को माना जिसने उनके आगमन को इस आयाम तक विकसित करने में मदद किया। साथ ही उन्होंने कहा कि उन्हें ''आज या पहले से घोषित कार्यक्रम के समाप्त हो जाने के बाद आश्रम को छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं थी।''

उन्होंने कहा, ''आश्रम में कुछ घटनाएं ऐसी होती रहीं है जो हमारी अनन्य ब्रह्मविद्या साधना के साथ साथ नारायणाश्रम तपोवनम् के उद्देश्यों के स्तर के तालमेल में नहीं है। मौलिक रूप से स्थान को आवश्यक **सार्वजनिक आध्यात्मिक स्वरूप** नहीं दिया गया है, जिस पर बराबर मेरे द्वारा बल देकर कहा गया है।

''पी० मेरे अति प्रिय है। उन्होंने बहुत आध्यात्मिक अनुराग से इस स्थान को

दिया था और यहाँ मेरे तथा अन्य लोगों के ठहरने के लिये और हमारे क्रियाकलापों के संचालन के लिये सुविधायें बनाईं। किन्तु वही मन लगता है कि अब अनुचित रूप से मोह का शिकार हो गया है। प्रत्यक्षतः उनके विचार एवं योजनायें भी, मैं जिसे सही एवं समताल में समझता हूँ, उससे बिल्कुल भिन्न हैं। इस नयी घटना को पहचान कर यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि मैं इस स्थान को छोड़ना चाहता हूँ जिससे वे अपनी इच्छाओं एवं योजनाओं के अनुसार कार्य कर सकें। मैं उनका भला चाहता हूँ।

''मुझे विश्वास है कि आप सभी इन घटनाओं को सही भक्तियम भाव से लेंगें। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप सब को ब्रह्मविद्या के लिये जो तपस्या या प्यार है, उसमें कोई कमी होनी चाहिये। बल्कि ये परिवर्तन एवं उसकी ओर ले जाते वाली स्थितियाँ आपकी निष्ठा को अधिक दृढ़ एवं प्रेरित करना चाहिये। एक को छोड़ने का अर्थ हमेशा दूसरे को प्राप्त करना है। भगवान का काम रुक नहीं सकता है।

''ब्रह्मविद्या का कारण, जिसके प्रति हमारी वंश परम्परा पूर्ण रूप से समर्पित है, अपनी ही योग्यताओं के कारण तीव्रतर हो। यह याद रखें किसी **आध्यात्मिक संस्था के निर्माण में पथ प्रदर्शक बल इससे जुड़े लोगों की शुद्धता एवं अनन्यता है।** एक चिर स्थायी शुभ विकास केवल तभी होगा जब साधक इस आन्तरिक **आत्म-समृद्धि** को साकार बनाते हैं। आप सब के शुभ एवं प्रिय कामनाओं की पूर्त्ति हो।'' (क्रमशः)

सच्चा अनिकेत्व क्या है ? अगर आप अनुभव करते हैं कि आप आत्मा हैं, तब इसका निवास स्थान (घर) क्या हो सकता है ? क्या मकान आत्मा का आतिथ्य कर सकता है? क्या आप शरीर के लिये एक आवास की तलाश कर रहे हैं ? तब विस्तृत पृथ्वी सदैव वहाँ है। क्या आप किसी आवास से लगाव या पहचान अपने मन में पाल रहे हैं ? तब ऐसा परिचय में कोई वास्तविकता नहीं है। जब दृष्टि की निष्पक्षता, उदासीनता एवं पारदर्शिता आपको पूर्ण रूप से सुशोभित करती है तब आप संयोगवश किसी भी जगह में रहें, वह आपके लिये शान्ति निकेतन हो जायेगा।

- स्वामीजी

इच्छाओं के विलय से परम् शान्ति

– माँ गुरुप्रिया

सम्यगालोकनात्सत्यात् वासना प्रविलीयते ।
वासनाविलये चेतः शाम्यत्यस्नेहदीपवत् ।।

(लघु-योग वशिष्ठ 4.3.46)

सत्य को अच्छी तरह समझने पर इच्छाएँ पूर्णतया विलीन हो जाती हैं। इच्छाओं के पूर्णतः अंत होने पर मन बिल्कुल शांति होता है जैसे दीपक की ज्योति तेल के समाप्त होने पर शांत हो जाती है।

आत्मनिरीक्षण के बिंदु

संसार काल्पनिक और अस्थाई है, लेकिन एक आधार है 'ब्रह्म', सर्वोच्च सार्वभौमिक सत्ता जो वास्तविक, अनन्त और अपरिवर्तनशील है। यह एक ही है, दूसरे के बिना। इस अपरिवर्तित आधार के ऊपर यह नाशवान सतत् परिवर्तनशील संसार, जिसमें हमारा शरीर, मन, बुद्धि और व्यक्तित्व का समावेश है, क्रीड़ा कर रहा है।

परम सत्य जिसे हम 'मैं', स्वयं विषयी के रूप में सूचित करते हैं, यह हमारे नाशवान शरीर और मन से बिल्कुल भिन्न है। यह सदैव शाश्वत, अविनाशी, अपरिवर्त्तनशील और सर्वव्यापी है। यह स्वयं ब्रह्म है। वस्तुतः एक सार्वभौमिक, सर्वव्यापी, शाश्वत और अविभाजित सत्ता के अलावा दूसरा कुछ नहीं है।

पसन्द और नापसन्द की उपस्थिति ही मन को व्यथित करता है जिसका परिणाम डर, दुःख, चिंता आदि हैं।

जब तक कोई यह सोचता है कि वह एक शरीर है, वह प्रत्येक वस्तु का अनुभव अपने से भिन्न करता है। इसी विभिन्नता के कारण मन में पसन्द और नापसन्द के रूप में इच्छा उत्पन्न होती है। वह जिसे पसंद करता है उसे ग्रहण करना और जिसे नापसंद करता है उससे बचना चाहता है। पसन्द और नापसन्द की उपस्थिति ही मन को व्यथित करता है जिसका परिणाम डर, दुःख, चिंता आदि हैं।

सत्य के ऊपर अच्छी-तरह मनन करने पर कि 'मैं', ही अविनाशी, सार्वभौमिक सत्ता है, सारी इच्छायें विलीन हो जाती है। जब एक ही सत्ता सर्वव्यापी, इससे भिन्न कुछ नहीं है तब मन में क्या इच्छा पैदा हो सकती है कि किसे ग्रहण किया जाय या किसे त्याग दिया जाय। सबकुछ एकमात्र आत्मा और आत्मा ही है।

इच्छा की अनुपस्थिति में मन पूर्णतः शान्त हो जाता है और अंतहीन परम शांति का आनंद उठाता है।

जब इच्छा विलीन हो जाती है, मन पूर्णतः स्थिर हो जाता है बिल्कुल उस दीपक की तरह जिसकी ज्योति शांत हो जाती है जब उसका तेल पूर्णतः समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार इच्छा की अनुपस्थिति में, जो कि व्यथा का कारण है, मन पूर्णतः शान्त हो जाता है और इच्छा-विहीनता से उत्पन्न अंतहीन परम शांति का आनंद उठाता है।

पूरे दिन हमारा मन भिन्न-भिन्न इच्छाओं से ग्रसित रहता है। परिणाम स्वरूप उत्तेजना और अशांति पैदा होती है। जब मन बेचैन हो जाता है, तब सत्य के ऊपर गहराई से चिन्तन करना चाहिए – ''मैं सर्वव्यापी परम सत्ता हूँ। मैं सर्वत्र और सबमें व्याप्त हूँ। मुझसे भिन्न कुछ नहीं है। **मुझे इच्छा करने के लिए क्या है?** मेरी अब कुछ भी इच्छा नहीं है।''

इस श्लोक का बारम्बार उच्चारण करने और इसके अर्थ का मनन हमें परम सत्य के ऊपर विचार करने के लिए विवश कर देगा। इसके अर्थ पर विचार हमें उस स्तर पर पहुँचने के लिए प्रेरित करेगा जहाँ मन सभी इच्छाओं से मुक्त, एक इच्छारहित मन से संबंधित परम शांति का आनंद पाएगा।

शब्दार्थ :

सम्यक = अच्छी तरह; **आलोकनात् सत्यात्** = सत्य के बोध से; **वासना** = इच्छा; **प्रविलीयते** = विलय; **वासना विलये** = इच्छाओं के विलय पर; **चेतः** = मन; **शाम्यति** = शांत हो जाता है; **अस्नेहदीपवत्** = उस दीप के समान जिसका तेल समाप्त हो गया है।

अन्वय :

सम्यक सत्यात् आलोकनात् वासना प्रविलीयते। वासनाविलये चेतः अस्नेहदीपवत् शाम्यति।। ■

दीक्षा-साधना का अनुसरण

24 जून 2012

हरिः ॐ तत् सत्। जय गुरु। स., जो कल समाप्त हुए पंच-साप्ताहिक Experiential Vedanta कार्यक्रम में उपस्थित रहे हैं, शीघ्र ही आश्रम से प्रस्थान करने वाले हैं। जब मैं विज्ञान भवन में प्रवेश कर रहा था, उन्होंने पूछा, ''अब जबकी मैंने दीक्षा ले ली है, मुझे विशेषतः क्या करना है?'' मुझे लगता है यह अत्यन्त उपयुक्त प्रश्न है, और आप सभी के लिये भी, विशेष रूप से उनके लिये जिन्होंने ब्रह्मविद्या-दीक्षा ली है।

मेरे प्रिय पुत्र, पहले तो तुम्हें अपने अंतरतम से अनुभव करना चाहिये कि तुम एक दीक्षित-शिष्य हो। और यह भावना शेष जीवन के लिए सबसे महत्तपूर्ण होनी चाहिये। एक दीक्षित शिष्य के लिये दो बातें प्रधान हैं। एक तो यह कि वह ब्रह्मविद्या के पथ पर प्रवेश कर चुका है, जो अपने में एक अनूठी बात है। और दूसरा कि यह पथ वैसा नहीं जिस पर अकेले चला जाये। इस पथ पर चलने की दीक्षा एक सद्गुरु देते हैं। जैसे दूध को उसके श्वेत रंग से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही ब्रह्मविद्या का अनुसरण और सद्गुरु का साथ अभिन्न हैं।

समझ लो कि सर्वोच्च की ओर ले जाने वाले पथ का मार्गदर्शन हो चुका है।

यह दीक्षा तुम्हारे जीवन में गहरा परिवर्तन लाने में समर्थ है। **कितना परिवर्तन आयेगा, यह निर्भर करेगा कि तुममें कितनी गुरुभक्ति है और तुम्हारा जीवन ब्रह्मविद्या के अनुसरण से कितना निर्देशित है।** सत्य की साधना में तुम्हें *ब्रह्मविद्या* की सिद्धि को प्रमुख और सर्वश्रेष्ठ गुरुत्व देना ही पड़ेगा। ब्रह्मविदाप्नोति परम् - ब्रह्मज्ञाता को सर्वोच्च की प्राप्ति होता है। इसका अर्थ क्या है? समझ लो कि सर्वोच्च की ओर ले जाने वाले पथ का मार्गदर्शन हो चुका है। इस समझ और दृढ़ विश्वास से तुम्हें अपने सारे भावों और प्रवृत्तियों को गढ़ना है।

तुम्हारे जन्म ने तुम्हें एक शरीर दिया। जीवन के साथ-साथ तुम्हारी शिक्षा भी हुई। तत्पश्चात तुमने विवाह किया और गृहस्थ जीवन प्रारम्भ किया। तुम्हारे दो

बच्चे हैं। उनको अच्छी तरह बड़ा करना है। उनका तुम अच्छा मार्गदर्शन करो और पिता की भूमिका में विफल न होना। उनकी अच्छी देखभाल करना। यह धीरे-धीरे, दिन-प्रतिदिन करना होगा। एक साल में जो उन्नति हो सकती है उसे तुम एक दिन या एक सप्ताह में तो ला नहीं सकते। बच्चे समयानुसार एक दिन बड़े हो जायेंगे। यह एक पेड़ के बड़े होने समान है या जैसे गंगा बहती है या जैसे बादल आकाश में उड़ते उड़ते अन्ततः बरसते ही हैं। ठीक उसी प्रकार बच्चों की आयु बढ़ती रहेगी और फिर एक समय आयेगा जब वे अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे, और स्वतंत्र व्यक्ति बन जायेंगे।

इन सबके साथ तालमेल के साथ रहो। इनमें से कोई भी तुम्हारे आध्यात्मिक उद्यम में बाधा नहीं डालेंगे। इन सभी घटनाओं के बीच में से गुज़रते समय अपनी साधना के प्रति निष्ठा बनाये रखना। जब तक तुम अपने मुख्य ध्येय पर केन्द्रित रहोगे, तुम पाओगे कि सभी बाहरी रुकावटें अपने आप ही खत्म हो जायेंगी। कृष्ण के महान आश्वासन को मत भूलना :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

भगवद्गीता 9.22

> जो परमेश्वर के ध्यान-चिन्तन में ही मगन रहते हैं, और इस अनन्यता को अपनी आराधना का सार और विषय-वस्तु बनाते हैं, उनके कल्याण और समृद्धि का भाव परमवेश्वर स्वयं ही ले लेते हैं।

अगर तुम पूरी तरह इस अनुसरण पर केन्द्रित हो जाते हो, तो तुम देखोगे कि तुम्हारे चारों ओर सब कुछ ऐसा ही जो तुम्हारे अनुसरण को और प्रोत्साहित करेगा। तुम्हें और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होगी। तुम्हारे धार्मिक रीति-रिवाज पहले से अधिक श्रेष्ठ हो जायेंगे, और समय या स्थान पर निर्भर नहीं रहेंगे। साथ ही तुम्हारी निष्ठा बढ़ जायेगी। एक बार तुमने ब्रह्मविद्या का अनुसरण आरम्भ कर दिया, तो बाकी धार्मिक आचार अनावश्यक हो जाते हैं। तुम उन्हें बन्द भी कर सकते हो। हां, दूसरों के लिये तुम उनमें से कुछ करते रह सकते हो। पर समझ लो कि दीक्षा के साथ-साथ तुम्हारे लिये यह ब्रह्मविद्या ही एकमात्र आश्रय है। अपने घरवालों को समझाओ कि किस प्रकार तुम्हारा धार्मिक जीवन आध्यात्मिक जीवन में परिणत हो गया है।

आध्यात्मिकता का अर्थ है ''मै शरीर नहीं, आत्मा हूँ, इन्द्रियगोचर विषय नहीं, पर विषयी हूँ''। इस विशेषता का प्रभाव तुम्हारे सभी भावों और आग्रहों पर पड़ना चाहिये। यह एक निश्चित उन्नति है। जिस प्रकार **ईश्वर यह विश्व बने, और ऐसा बनकर वे किंचित भी तुच्छ नहीं हुए,** बल्कि उनकी विशिष्टता और सामर्थ्य का केवल विकास ही हुआ, ठीक उसी प्रकार तुम पाओगे कि जब तुम्हारी आध्यात्मिक खोज संरक्षित और पोषित होगी तब तुम्हारी उन्नति भी प्रगति के पथ पर होगी।

कुछ प्रथागत और नैतिक नियमों के बारे में तुम जानते होगे जैसे कि 'सत्य बोलना', 'किसी को क्षति न पहुँचाना', 'कोई गोपनीयता नही रखना', 'सीधा व्यवहार करना', इत्यादि। इनका सतत पालन करना। कभी-कभी तुम्हें अनैतिक लोगों के साथ चलना पड़ेगा। तुम्हारे मन में उनके प्रति स्वीकरण और समर्पण का भाव रहना चाहिये। कार्यक्षेत्र में एक कार्यकर्ता होने के कारण ऐसी अनेक घटनाएं होंगी जिन्हें तुम बदल नहीं पाओगे। उनके प्रति सावधान रहना।

मेरे एक शिष्य ने मुझे बताया कि कार्यक्षेत्र में उसे अपराधियों से बलपूर्वक सूचनायें उद्धार करनी पड़ती थी। मैंने उसे कहा, ''आज से किसी को शारीरिक रूप से आहत मत करना। उन्हें अपना हृदय खोलकर बताना। कहना कि तुम्हारे गुरु ने किसी को शारीरिक दण्ड देने से मना किया है। उन्हें सच बताने के लिये बाध्य करते रहो। देखना वे तुम्हारा सहयोग देंगे।'' प्रतीत होता है कि उसके बाद उस शिष्य को कभी शारीरिक ज़ोर नहीं लगाना पड़ा। उसे देश की सीमाओं पर और अन्य स्थानों पर भी कई महत्तपूर्ण उत्तरदायित्त्व संभालनी पड़ीं। पर वह सब उसने कुशलता से निभाई।

तो मेरे प्रिय पुत्र, सच्चे बनो, अच्छे बनो और दयालु बनो। तुम्हारे चारों ओर लोग ऐसे हों या न हों, तुम्हें किसी कारण से बुरा नहीं बनना है। निर्णय कर लो कि तुम्हें किन गुणों को विकसित करना है, और फिर उनका स्नेहपूर्वक पोषण करो। चाहो तो कहीं पर अपनी उन्नति को लिपिबद्ध करो। इन गुणों के प्रति अपना प्रेमभाव रखो और फिर ये बिना किसी कष्ट के तुम्हारे हो जायेंगे।

अगर तुम अपनी साधना मन लगाकर करोगे तो ध्यान के समय तुम्हें बहुत सुन्दर तन्मयात्मक अनुभव होंगे जिनसे शरीर में कभी उल्लास, हर्षोन्माद,

आनन्द और तरह-तरह की तरंगें बहेंगी। इन सब अनुभवों को भी एक डायरी में लिखते रहना। जो कुछ होता है वह सब कुछ डायरी में लिखो। सफलता और सिद्धि तुम्हारी साधना की प्रबलता और तुम्हारी गुरु-भक्ति पर निर्भर करेगी।

उदार और विनम्र रहो। मुझे लगता तुम ऐसे ही हो। आक्रामक मत बनो। मैं चाहूंगा कि अपने कार्यक्षेत्र में बहुत कुशल रहो और जीवन के सभी अवस्थाओं में समान रूप से सचेतन रहो। घर चलाने में सचेतन रहना। पत्नी और बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान रहे। उन्हें बहुत अधिक लाड़-प्यार कभी मत देना। अपने हृदय की बातें उन्हें कहते रहना। अपने जीवन के अनुभव उन्हें बताना और यह भी कहना कि सावधानी कहां बरतनी है।

हो सकता है कि बच्चे इस वक्त तुरंत ही तुम्हारी न भी सुने। पर यही वह ज्ञान व पथप्रदर्शन है जो उनके आने वाले दिनों में उनका होगा। कुछ साल बाद बच्चे तुमसे दूर हो जायेंगे। शायद दोस्तों और अन्य लोगों के प्रभाव में भी आ जायें। पर अगर तुम्हारी साधना गम्भीर है तो तुम पाओगे कि यद्यपि कुछ देर के लिये वे तुमसे दूर चले गये हैं, आखिरकार वे वापस आयेंगे और जो भी तुम उनको बताते रहे हो उसका मूल्य समझेंगे और उसका आदर भी करेंगे।

आश्रम में हम सभी से सम्पर्क बनाये रखना। आश्रम की गतिविधियों में अपनी रुचि रखना। जमशेदपुर के CIRD में तुम्हारी अभिरुचि रहे, ऐसा चाहूंगा। हमें तुम जैसे कुछ युवक चाहिये। इस साल, हम कम से कम 4 कार्यक्रम वहां संचालित करना चाहेंगे। एक तो हमारा वार्षिक ज्ञान यज्ञ, इसके अलावा 3 और कार्यक्रम होने चाहियें - एक विद्यार्थियों के लिये, एक अध्यापकों के लिये, और एक अधिकारियों के लिये। यही बात मेरे मन में है। मैं चाहता हूँ कि तुम इनमें अपने अनुसार भाग लो और देखो कि तुम किस प्रकार से अपने सामाजिक पहलू को बढ़ा सकते हो। ध्यान रहे कि तुम ब्रह्मविद्या के साप्ताहिक सत्संग में लगातार जाते रहना। इसमें कभी भूल न हो। यहां जो कुछ हुआ, जाकर अपने पत्नी से कहना। उन्हें अपनी भावनाओं के बारे में बताना और यहां स्वामीजी, नूतन स्वामीजी एवं माँ से तुमने क्या कुछ सीखा, इसका विवरण देना। तुम्हारी समझ और परिपक्क हो, और तुम्हारे एवं तुम्हारी पत्नी और बच्चों के बीच का आदान-प्रदान और भी सुन्दर हो।

हरिः ॐ तत् सत्। जय गुरु।

संस्कृत – हमारी जीवंत गौरवपूर्ण विरासत

(जनवरी में, श्रीमूलस्थानम (त्रिचूर) में हुए आत्म-तत्त्व-समीक्षा सत्रम के दौरान, पूज्य स्वामीजी ने राष्ट्रीय महत्त्व के कुछ अत्यन्त गंभीर मुद्दों को उठाया। यह हमारे देश के नागरिकों एवं नेताओं को संस्कृति तथा शासन से संबंधित गंभीर विषयों के प्रति जागरूक करने के लिए था। उनके कुछ विचारों को, मीडिया ने अच्छी तरह प्रकाशित किया जिसे श्रृंखलाबद्ध यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।)

भारतवर्ष की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के वास्तविक स्मारक वृहत्त संस्कृत साहित्य से निर्मित वेद, महाकाव्य एवं अन्य शास्त्र हैं जो हमें पीढ़ियों द्वारा वसीयत में प्राप्त हुए हैं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इन शास्त्रों की रचना विश्व की सबसे वैज्ञानिक और परिष्कृत भाषा संस्कृत में हुई है, जिससे हम उन्हें आज भी उसी स्पष्टता एवं महत्त्व से समझ सकते हैं जैसे यह हजारों वर्ष पूर्व था। संस्कृत की तरह कोई दूसरी भाषा समय के आक्रमण के पश्चात विद्यमान नहीं हैं।

यह हमारे शास्त्र ही हैं जो भारत की संस्कृति को परावर्तित करते हैं, भूतकाल की कोई भौतिक खंडहर और स्मृति चिन्ह नहीं।

इसलिए संस्कृत देव-भाषा कहलाती है, एक अद्वितीय या पारलौकिक भाषा!

संस्कृत की प्रारूप एवं संरचना अत्यन्त वैज्ञानिक एवं तार्किक है। मानव मुख से निकलनेवाली सभी एवं शब्द वर्णमाला की पंक्ति में प्राकृतिक क्रम से ध्वनियाँ संजोए एवं व्यविस्थत किये गए हैं। संस्कृत में कठोर-मृदु और मृदु-कठोर व्यंजनों के सम्मिश्रण का तरीका अत्यन्त रोचक एवं विचारों को उत्तेजित करनेवाला है जैसे दूध और जल का मिश्रण। संस्कृत भाषा का आधिपत्य अनगिनत शहस्त्राब्दियों से बिना किसी अपंगता या क्षय के आज भी सजीव है। इसे एक मृत भाषा समझना मात्र मूर्खता है, हमारी विरासत को नीचे गिराना है।

प्राचीन भारत में संस्कृत राजकीय भाषा थी जिस प्रकार आज हिंदी और अंग्रेजी

है। हमारे देश में संस्कृत राजाओं एवं दूसरे शासनों के विद्वानों के बीच संचार का माध्यम था। यह पूरे भारतीय उपमहाद्वीप की अंतर-प्रांतीय भाषा थी।

हमलोगों ने अंग्रेजी भाषा को इतनी अच्छी तरह अपनाया है इससे हम सभी खुश हैं, किन्तु हमें स्मरण रहना चाहिए कि अपनी भाषा संस्कृत की कीमत पर यह नहीं होना चाहिए। हम कभी भी अपनी संस्कृति और परंपरा की रीढ़ संस्कृत को गौण और धुंधला होने की अनुमति नहीं दे सकते हैं। संस्कृत भाषा शब्द, विचार मापक, सूक्ष्म व्युत्पत्ति विषयक, और तार्किक आधारों में समृद्ध है।

कोई भी भाषा लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकती है यदि उसके प्रारंभिक घटकों को सावधानीपूर्वक सुरक्षित नहीं रखा जाए। हमें शब्दों के चुनाव, वाक्यों की रचना, व्याकरण के अनुसरण और उच्चारण की शुद्धता में अत्यन्त सावधानी और ध्यान देनी चाहिए। इसमें भाषा के शिक्षक और दृश्य-श्रवण माध्यम को विशेष ध्यान रखनी चाहिए। इस संदर्भ में हमें एक उचित राष्ट्रीय परिपेक्ष्य का प्रतिपादन करना चाहिए।

संस्कृत भाषा और संस्कृति के प्रति हम अपना ऋण केवल तभी चुका पाऐंगे जब हम भारतवर्ष में कहीं सभी आधुनिक सुख-सुविधाओं से पूर्ण एक 'संस्कृत-नगरी' का निर्माण कर सके, जिसमें करीब दो लाख लोग एक साथ रहें और अपने कार्यों का संचालन संस्कृत में करें, और इस प्रकार संस्कृत आधिकारिक भाषा के रूप में पुनः स्थापित हो सके। वहाँ बच्चे स्वाभाविकता से अपनी मातृभाषा के रूप में संस्कृत सीख सके। और कुछ अंतराल बाद वहाँ संस्कृत के अध्यापन और शोध के लिए एक अंतराष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए। वहाँ लोग प्राचीन संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन कर सकें और समकालीन संस्कृत साहित्य की कविता, नाटक प्रस्तुत कर सकें और प्रतियोगिताओं का आयोजन करें जो पूरे विश्व भर का ध्यान आकर्षित करेगा। ऐसे विचारणीय 'संस्कृत नगर' की योजना होनी चाहिए, निर्माण होना चाहिए जहाँ इन विषय परकों की सुविधा प्रदान हो।

यदि संस्कृत के प्रेमी और भारत सरकार इन पंक्तियों पर विचार करना प्रारंभ करे तो यह हमारी सांस्कृतिक देश-भक्ति और निष्ठा के लिए महान श्रद्धांजलि होगी।

•❖•

जीने के लिए अथवा त्यागने के लिए

7 अप्रैल 2014

प्रिय स्वामीजी,

जय गुरु। विगत रविवार (6 अप्रैल 2014) को ध्यान पर चर्चा ने मुझे अचरज में डाल दिया कि हम गृहस्थों के लिए वर्षों के ध्यान, निरीक्षण और अवलोकन के पश्चात् भी आत्म-अनुभूति इतना कठिन क्यों है। मैंने 'U' से पूछा 'P' ध्यान क्यों नहीं करते और उनका उत्तर था कि उन्हें आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह पहले से ही ईश्वर का कार्य कर रहे हैं और उस बिंदु तक पहुँच गए हैं जहाँ पहुँचने के लिए हम गृहस्थ संघर्ष कर रहे हैं।

मुझे अभी तक स्मरण है कि 2012 में शिविरम् के दौरान जब मैं आश्रम में था, आपने कहा था कि ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं है। इन सब से क्या मैं ये समझूँ कि पूर्ण समर्पण, सभी बंधनों को मुक्त करना, कोई इच्छा नहीं रखना, ईश्वर के प्रति चिंतन और गुरु के सान्निध्य में रहना तथा 'मैं ब्रह्मण हूँ' एकमात्र इस विचार के साथ पूर्ण एकांत में रहना, आत्मा की खोज का एकमात्र पथ हो सकता है।

'R' अंकल ने बताया कि हर बार जब वे ध्यान करते हैं, अनेक बेकार से विचार उनके मन से गुजरते हैं और अभी तक उन्होंने 'ज्योति' नहीं देखी है। इससे मैं आश्चर्यचकित हूँ 'क्यों' ? इतने वर्षों के बाद भी और इतनी कठिनाईयों के बाद भी क्यों ?

अतः मैंने निष्कर्ष निकाला कि हमारे पास दो विकल्प हैं : **सबकुछ त्यागकर गुरु के सान्निध्य में रहें या गृहस्थ का जीवन जीएँ और अच्छे बनें तथा ध्यान करें।** हमें भगवद्गीता, बाईबिल, कुरान इत्यादि को अपना मार्गदर्शक बनाना चाहिए, अच्छा जीवन जीने एवं मृत्यु के आगमन पर कोई पछतावा नहीं रहने के लिए। मृत्यु को आने की अनुमति दें, खुली बाहों से स्वीकार करें और प्रसन्नतापूर्वक इसका अनुसरण करें। और ऐसा होने के लिए, सभी समय, सभी के साथ

अच्छा रहें और बिना शर्त प्यार करें। बहुत बार संकट में मौन का आश्रय चीख से अधिक प्रबल होता है। सभी विपरीत को शुभ लक्षण की तरह स्वीकारें कि अवश्य ही इनसे कुछ भला होने वाला है। जितना अधिक आप दे सकते हैं दें, बदले में कुछ नहीं चाहते हुए। सेवा करें, जिससे दूसरों की मुस्कुराहट से आनंद प्राप्त कर सकें। सादा जीवन जीएँ। हम गृहस्थों को याद रखना चाहिएः ''जब बारिश होती है, वह जोरदार बरसती है, किन्तु शीघ्र ही सूर्य दोबारा चमकता है,'' अतः सकारात्मक रहें क्योंकि अच्छे दिन आनेवाले हैं।

इन्हें अपने जीवन का मार्ग बनाने से, हम एक बेहतर मानव होंगे। हमारा जीवन तब सार्थक होगा और बिना भय और पछतावा के साथ हम अपनी अंतिम श्वास ले सकेंगे। यह मृत्य का विचार ही है जो मरणासन्न और उसके आसपास के लोगों में दर्द और चिंता का कारण बनता है। अतः, मैं दूसरे विकल्प को चुनता हूँ और 'मृत्यु आने तक' जीवन का निर्वाह करूँगा।

क्या मेरा अभिप्राय ठीक है ? मैं जानता चाहता हूँ कि क्या मैं सही मार्ग पर हूँ ? स्वामीजी, कृपया मार्गदर्शन करें।

आपका विनीत सेवक, E

***

10 अप्रैल 2014

प्रिय एवं अनुगृहीत 'E' ,

हरि ॐ तत् सत्। आपका 7 अप्रैल का लिखा ई-मेल मेरे समक्ष है और मैं इसे पुनः पढ़ रहा हूँ।

आपने जो लिखा है वह सही है, किन्तु यह निरुत्साहिता, विफलता, शंका या व्याकुलता का परिणाम नहीं होना चाहिए। अच्छे, प्रिय एवं दानी बने। एक उच्च एवं प्रशंसनीय जीवन के लिए यह पर्याप्त है।

अध्यात्म का अनुसरण कष्ट, यातना या पीड़ा से मुक्त कराना और सुधारना है। अन्यथा, यह ज्ञान के लिए एक शैक्षिक साधना बन जाएगा। जिस प्रकार मन संतोष द्वारा मुक्त और तुष्ट होता है उसी प्रकार बुद्धि केवल ज्ञान से ही संतुष्ट होता है। आप अपनी क्षुधा भूल सकते हैं, किन्तु अपनी खोज

और बाध्यता नहीं। क्या कुछ ऐसी धनी महिलाएँ नहीं हैं, जो अपनी संपत्ति को तिरस्कारपूर्वक देखती हैं क्योंकि यह मन को संतुष्टी नहीं देता है? उसी तरह क्या बहुत से ऐसे निर्धन नहीं हैं, जो अपनी अल्पता के बाद भी निश्चित निद्रा के साथ पर्याप्त सुखी हैं ?

यह पूर्णता जिसे ज्ञान और मोक्ष कहते हैं, अनंत के समान है। इसके पूर्ण परिमाण की लालसा क्यों ? यह आपके लिए न तो आवश्यक है न ही सुव्यवस्थित। यहाँ तक कि यदि आप इसकी अति सूक्ष्म मात्रा जैसे .0000000000001 अंश का भी लक्ष्य करते हैं क्या यह अभी भी पर्याप्त नहीं है ? अनंत का एक अति सूक्ष्म कण भी क्या है ? स्वयं अनंत। अपने आदर्श के अनुसरण और उपलब्धि के महत्त्व के एक अंश को भी कम न आँकें।

अंकल 'R' ने वही कहा जो उन्होंने अनुभव किया। आत्मानुभूति पुस्तकों या उपनिषदों में नहीं है। पुस्तकें, इसे समझाकर और यह कहाँ है इसे दिखाकर इस निधि तक आपको ले जाती हैं। निधि स्वयं अपने अंतर में है।

ध्यान के संबंध में : विचार कभी भी बाधक नहीं हैं। इस सत्य को वास्तविक करना है। जब जल प्रवाहित होता है नदी बनती है। क्या नदी भौतिक या रासायनिक रूप में जल को प्रभावित करती है? नदी जल है - झील, तालाब और समुद्र सभी। मन के स्थिर रहने की इच्छा आपके अज्ञानता की पुष्टि करता है। अंकल 'आर' को ढूँढ़ने दें विचार क्या बन जाता है, यदि ऐसा सब है तो।

यह जल के प्रवाह सा है। यह भी सही नहीं है। पानी बहनें में सक्षम है, क्योंकि पृथ्वी पर ऐसे विस्तृत क्षेत्र हैं जहाँ यह एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक बह सकता है। क्या मन के लिए ऐसा कोई 'भूमि-क्षेत्र' है जहाँ वह प्रवाहित हो सकता है? मन प्रवाहित नहीं होता, इसका अर्थ है ऐसे कोई विचार नहीं हैं। मन सांकेतिक रूप में विचार उत्पन्न करता है, भौतिक रूप में नहीं। क्या वह स्वयं इसका अनुभव शरीर के अंदर नहीं करता? विचार कोई बाधा नहीं है - **इस तरह देखना प्रारंभ करें।**

मन विचार करता है, जैसे रक्त प्रवावित होता है और श्वास आती जाती है। जीवन के अनुरक्षण के लिए सभी आवश्यक हैं। उन्हें पदार्थों की, चेतना की झलक लेनी है, और देखने का पुष्टि करनी है कि विचार की प्रक्रिया में, 'मन-पदार्थ', चेतना में किसी भी तरह का कोई सूक्ष्म परिवर्तन, ह्रास या जोड़ नहीं होता है।

जब तक वे विचार पदार्थ और विचारक का अवलोकन, अनुभव और उनके साथ रहेंगे, उनकी समस्या जारी रहेगी।

विषय को भिन्न तरीके से सोंचें। ध्यान की अवधि कम है। बिना-ध्यान की अवधि कहीं अधिक है। बिना ध्यान के घण्टों की तुलना में आधे-घण्टे की ध्यान साधना अपर्याप्त है। उस लंबी अवधि को अपना लक्ष्य बनाएँ, और सुनिश्चित करें कि उसे शुद्धता, उदात्तता एवं प्रेम से थाम सकें। मन शुद्ध होना चाहिए, बुद्धि भी। अहं छोड़ना चाहिए, मिटाना भी चाहिए। ये सभी एकमात्र बिना ध्यान की अवधि में। तब आपकी साधना के लिए प्रचुर समय है। इसका उपयोग करें एवं आकाश की ऊँचाई तक जाएँ। प्यार एवं आशीर्वाद। माँ और नूतन स्वामीजी की तरफ से प्यार एवं शुभकामनाएँ।

अंतरात्मा, स्वामीजी

''यदि मुझ से पूछा जाए कि भारत की महान निधि एवं उसकी उत्तम धरोहर क्या है, मैं निःसंकोच उत्तर दूँगा संस्कृत भाषा और उसमें समाहित साहित्य। यह एक विस्तृत विरासत है और जब तक यह हमारे लोगों के जीवन को प्रेरित एवं पोषित करती रहेगी, तब तक भारत की आधारभूत प्रतिभा जारी रहेगी।''

- पं० जवाहरलाल नेहरू, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री

(4 अक्टूबर 1994 को सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय में न्यायधीश कुलदीप सिंह एवं न्यायधीश बी एल हंसारिया द्वारा हस्ताक्षरित उक्ति)

समाचार एवं टिप्पणियाँ

गुरु पूर्णिमा और वार्षिक रिट्रीट : पुनीत गुरु पूर्णिमा आगामी 12 जुलाई 2014 को आश्रम में मनाया जाएगा। पूर्णतया ''साधना'' और गुरु सन्निधि पर केंद्रित यह **छः दिवसीय वार्षिक कार्यक्रम** 13 से 18 जुलाई तक मनायी जाएगी। इच्छुक गुरु भाई बहन 10 जून तक आवेदन कर सकते हैं। **फोन के माध्यम से पंजीकरण नहीं कराया जा सकता है।** पंजीकृत व्यक्तियों को **20 जून** तक सूचित कर दिया जाएगा। चुने हुए साधकगण **11 जुलाई** तक आश्रम में पधार सकते हैं और **19 जुलाई** तक वापस जा सकते हैं।

❑ **CIRD दिल्ली** : पूज्य स्वामीजी, नूतन स्वामीजी और माँ का 21 मार्च को CIRD दिल्ली में आगमन हुआ। ब्रह्मचारिणी नम्रता स्वरूपा भी उनके साथ थी। ब्रह्मचारी प्रसन्ना स्वरूपा बाद में 5 अप्रैल को पहुँचे।

श्रीमती सविता और श्री भरत वाखलू द्वारा गुरु-अर्चना की गयी। 200 समर्पित गुरु भक्तों ने इस पुनीत कार्यक्रम में हिस्सा लिया और पूज्य स्वामीजी के आशीर्वचन से लाभान्वित हुए। पूज्य स्वामीजी की सुबह की कक्षाएं विवेक चूड़ामणि पर आधारित "Harnessing Inner Resources for International Excellence", 24 मार्च से 2 अप्रैल तक चली। नूतन स्वामीजी का ''मुंडकोपनिषद्'' पर आधारित 6: दिनों का प्रबुद्ध सत्र 5 अप्रैल से प्रारंभ हुआ। वसुंधरा दिल्ली और आसपास के भक्तगणों ने उत्साह के साथ इसमें भाग लिया। मद्रास, बंगलूरू, जमशेदपुर, वाराणसी और दिल्ली के बहुत सारे भक्तगण माँ की शल्य चिकित्सा में सहयोग के लिए CIRD में रुके थे। पूज्य स्वामीजी एवं नूतन स्वामीजी के साथ 16 दिनों की शास्त्रीय व्याख्यान एवं जीवंत सत्संग ने CIRD में प्राचीन गुरुकुलम् के वातावरण का निर्माण किया।

गत वर्ष नवंबर में आयोजित ''ज्ञान यज्ञ'' के दौरान वसुंधरा के निवासियों के विशेष अनुरोध पर हिंदी में द्वि-दिवसीय प्रवचन के आयोजन की योजना की गयी थी। 29 और 30 मार्च को वसुंधरा के श्रीराम बिजनेस सेंटर में पूज्य स्वामीजी ने स्पष्ट और प्रभावी हिंदी में 'दैनिक जीवन में आध्यात्मिकता' विषय पर प्रवचन दिया। इसमें लोगों की उपस्थिति अच्छी रही।

02 अप्रैल को तीनमूर्ति भवन के नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी में पूज्य स्वामीजी ने ''भारत की गरिमा की पुनःस्थापना'' विषय पर 5वाँ प्रकाश मेमोरियल वार्षिक व्याख्यान दिया। उनके प्रभावी प्रवचन ने उपस्थित दर्शकों, जिनमें न्यायिक एवं वैधानिक क्षेत्र से, सरकारी महकमे के लोगों के साथ साथ साधक एवं भक्त थे, को बाँध दिया।

जस्टिस ए. के. पटनायक और न्यायविद टी. एस. ठाकुर (सुप्रीम कोर्ट के जज) विशिष्ट अतिथि के रूप से उपस्थित थे। न्यायविद ज्ञान सुधा मिश्रा और ए. आर. दवे भी उपस्थित थे।

5 अप्रैल को पूज्य स्वामीजी ने ''कुरुक्षेत्र में धार्मिक आवाहन'' विषय पर मलयालम में श्री उत्तरा गुरुवायूरप्पन मंदिर मयुर विहार फेज-1 में व्याख्यान दिया। अपने व्याख्यान के पूर्व उन्होंने केरल और तमिलनाडु के पारंपरिक शिल्पकारों द्वारा ध्वजास्तंभ में स्वर्ण जड़ित कार्यों की प्रशंसा की। 11 अप्रैल को पूज्य स्वामीजी ने दिल्ली मेट्रो रेल के अधिकारियों और कर्मचारियों को मेट्रो भवन में "Spiritual perception for Achieving Professional Excellence", विषय पर संबोधित किया।

❑ **अन्न वस्त्र दान सत्र (AVDS) :** 6 अप्रैल को 3 किलोग्राम चावल एक चादर और प्रसाद करीब 2000 जरूरत मंद परिवारों के बीच, जो कि मूलतः झुग्गी झोपड़ी और कुष्ठ परिवारों से थे वितरित किया गया। दान सत्र के कुछ दिन पहले से ही वसुंधरा और उसके आसपास के भक्त गण CIRD में एकत्रित होकर चावल पैकेट बनाने और इस यज्ञ को सफल बनाने में भरपूर सहयोग दिया। इस सत्र का आयोजन अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से किया गया था। पहले ही जरूरत मंद परिवार के लोगों को कूप. वितरित कर दिया गया था।

❑ 8 अप्रैल को माँ के दोनों घुटनों का सफलतापूर्वक ऑपरेशन डा. शेखर अग्रवाल द्वारा संत परमानंद अस्पताल सिविल लाइंस दिल्ली में किया गया। माँ 14 अप्रैल को अस्पताल से लौट आईं और फिजियोथेरेपिस्ट की देख रेख में स्वास्थ्य लाभ कर रही हैं। ब्रह्मचारिणी नम्रता स्वरूपा और माला श्रीधर उनकी सेवा में तत्परता से लगी हुई हैं।

इस बार पूज्य स्वामी जी के दिल्ली में दीर्घकालीन प्रवास के कारण ''विशु'' पर्व केरल का नया साल, CIRD में पहली बार मनाया गया। भारत के विभिन्न प्रांतो के शिष्य को अपने पूज्य स्वामीज जी से ''विष्णु-कैनिट्टम'' पाने का अवसर प्राप्त हुआ। जो कि नारायण आश्रम तपोवनम् का एक वार्षिक कार्यक्रम है। छोटा विशु साध्या'' पारंपरिक भोजन भक्तों द्वारा CIRD में बनाया और परोसा गया।

पूज्य स्वामीजी, नूतन स्वामीजी और ब्रह्मचारी प्रसन्ना 24 अप्रैल को आश्रम लौट गए। माँ अभी ग्रेटर कैलाश में ब्रह्मचारिणी नम्रता स्वरूपा और श्रीमती माला श्रीधर के साथ रहेंगी और डाक्टर को 4 सप्ताह बाद दिखा कर मई के तीसरे सप्ताह में आश्रम लौट जाएंगी।

अमेरिका में स्वामी निर्विशेषानंद जी का कार्यक्रम : नूतन स्वामी ने अमेरिका की यात्रा पर 20 मई को रवाना होंगें और वाशिंगटन डीसी मेट्रोपोलिटन एरिया में 24 मई से 2 जून और औरेंज काउंटी में 4 जून से 15 जून तक कार्यक्रम आयोजित करेंगें।

Virginia: May 24 to 29: "Upanishads – Key to Freedom and Lasting Happiness" - 6-day discourse series – American Legion, 1355 Balls Hill Rd, McLean, Virginia. **May 31 to June 01**: "Spirituality – the Sure way to Inner Fulfillment" - Stone Manor Vineyard and Orchard, 13193 Mountain Rd, Lovettsville, Virginia. (For registration and details visit http://www.cirdna.org/spring2014).

Contact (in CIRD-NA): Pankaj Bhatia (703)748-8405; Ram Prasad (703)343-5388; Santhi Sreeram (703)485-0540.

Orange County: June 04 to 07: "The Yoga of Personality Transformation" based on Bhagavadgeetā Chap 14. (Sweetan St, Irvine; 7:00 pm to 8:30 pm). **June 07**: "Upanishads – The Key to Freedom and Fulfillment" (Cerritos; 10 am to 3:00 pm). **June 08**: "Dharma – The Harmonious Way of Living" (Irvine; 11 am to 12 pm) for young adults. **June 08**: "Rituals and Spiritual Wisdom – Is there any Conflict?" (5 to 7 pm) **June 11 & 12**: "Religion and Spirituality" Interactive Satsang (Rocky Knoll, Irvine; 7 to 8:30 pm). **June 14 &15** (10 am to 2 pm): "From Death to Deathlessness" based on Kathopanishad (Rocky Knoll, Irvine). **June 14** evening (5 to 7 pm) "Science and Spirituality". **June 15** evening (5 to 7 pm) "Meditation and Beyond".

All the programmes are discourses followed by Q&A. For further details: **Contact (in California):** Shanti Narayanan & Natarajan Sunderesan (949) 529-4760; Malini & Dr. Anshu Vasistha (949) 254-7704. ■